महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय

मानविकी एवं भाषा संकाय
संस्कृत-विभाग
एम.ए. द्वितीय सत्र
प्रश्न पत्र- चतुर्थ
पाठ्यशीर्षक- योगदर्शनम्
कोड-SNKT 2004

उपशीर्षक : श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग

प्रस्तुत कर्ता
डॉ.बबलू पाल
सहायक आचार्य
संस्कृत-विभाग
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रणेता का संक्षिप्त परिचय :

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास –

जन्म स्थान- यमुना तट,हस्तिनापुर।

नामकरण - द्वैपायन नामक द्वीप पर तपस्या करने तथा शरीर का रंग काला होने के कारण इन्हें कृष्ण द्वैपायन कहा गया तथा कालान्तर में वेदों का भाष्य करने के कारण वेदव्यास कहा जाने लगा। इस प्रकार ये कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के रूप में प्रसिद्ध हुए।

माता –पिता :

सत्यवती –पराशर ।

कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास को वशिष्ठ मुनि के वंशज माने जाते हैं-

व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे।

नमो वै ब्रह्म निधये वाशिष्ठाय नमो नम:॥

ईश्वर स्वरूप :

कुछ पुरातन ग्रंथों के अनुसार महर्षि वेदव्यास ईश्वर के स्वरूप थे-

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र:।

येन त्वया भारततैलपूर्ण: प्रज्ज्वालितोज्ञानमय प्रदीप:॥

कार्य :

वेद का चतुर्धा विभाजन, १८ पुराण, महाभारत एवं भगवद्गीता के प्रणेता ।

श्रीमद्भगवद्गीता का सामान्य परिचय

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय ज्ञान परम्परा का प्रवाहक है। महाभारत के भीष्मपर्व में उल्लिखित यह गीता भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट ज्ञान सागर है। यह महान् ग्रंथ प्रस्थान त्रयी के अन्तर्गत परिगणित है जिसमें उपनिषद्,ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता आते हैं।

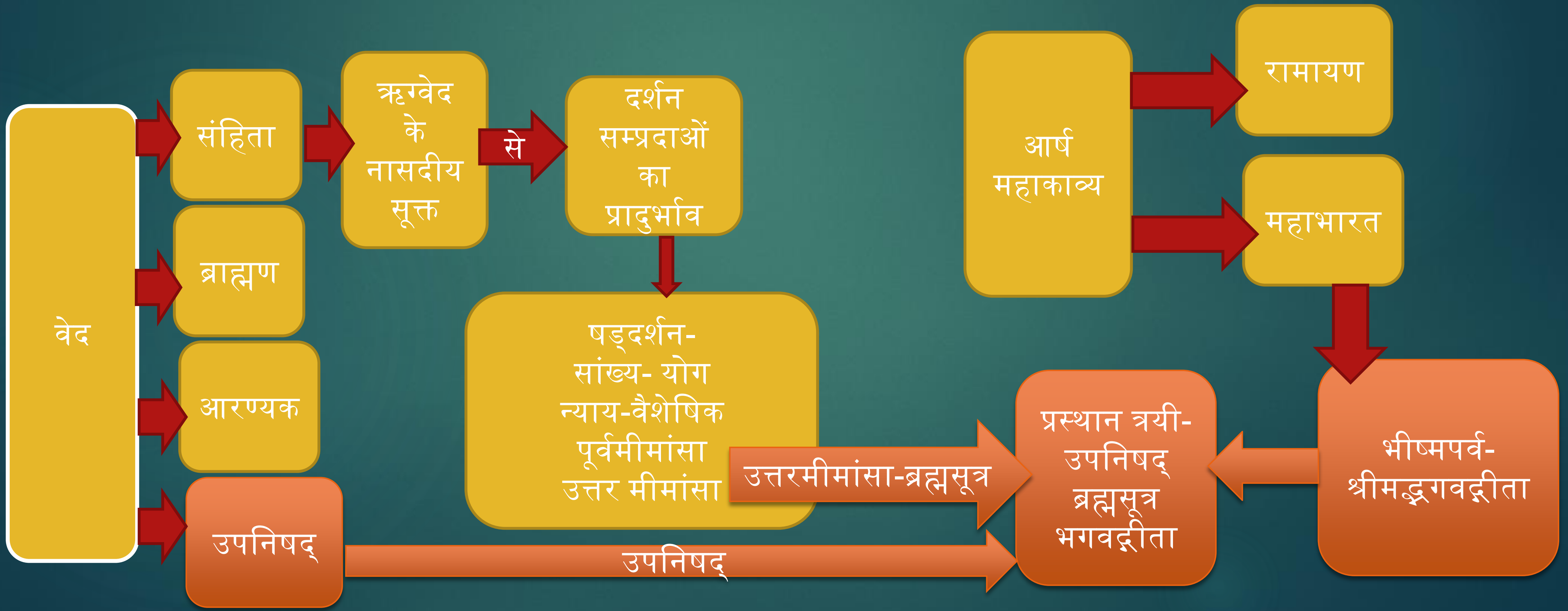

श्रीमद्भगवद्गीता

प्रथम अध्याय	अर्जुन विषाद योग	४७
द्वितीय अध्याय	सांख्ययोग	७२
तृतीय अध्याय	कर्मयोग	४३
चतुर्थ अध्याय	ज्ञानकर्मसंन्यासयोग	४२
पञ्चम अध्याय	कर्मसन्न्यासयोग	२९
षष्ठ अध्याय	आत्मसंयमयोग(ध्यानयोग)	४७
सप्तम अध्याय	ज्ञानविज्ञानयोग	३०
अष्टम अध्याय	अक्षरब्रह्मयोग	२८
नवम अध्याय	राजगुह्ययोग	३४

श्रीमद्भगवद्गीता

दशम अध्याय	विभूति योग	४२
एकादश अध्याय	विश्वरूप-दर्शनयोग	५५
द्वादश अध्याय	भक्तियोग	२०
त्रयोदश अध्याय	प्रकृति-पुरुष विभागयोग	३४
चतुर्दश अध्याय	गुणत्रययोग	२७
पञ्चदश अध्याय	पुरुषोत्तमयोग	२०
षोडश अध्याय	दैवासुरसम्पत्तिविभागयोग	२४
सप्तदश अध्याय	श्रद्धात्रययोग	२८
अष्टादश अध्याय	मोक्षसन्न्यासयोग	७८

कुल श्लोक - ७००

योग का लक्षण

यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता में योग के विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है किन्तु इसके अन्यान्य अध्यायों में योग के तीन स्वरूप दृष्टिगत होते हैं जिनका उल्लेख निम्न रूप से द्रष्टव्य है-

१.समत्वं योग उच्यते- समता का नाम ही योग है।

योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ भगवद्गीता-२/४८

२. योग: कर्मसु कौशलम्- कर्मों में योग ही कुशलता है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योग: कर्मसु कौशलम्॥ भगवद्गीता-२/५०

३. दु:खसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्- दु:ख संयोग का वियोग ही योग है।

तं विद्याद् दु:खसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥ भगवद्गीता- ६/२३

योग परम्परा

श्रीमद्भगवद्गीता को यदि योग का आदि ग्रंथ कहा जाये तो यह अत्युक्ति नहीं होगी क्योंकि योग के आदि प्रवक्ता भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं को योगेश्वर कहा है। इन्हीं से इस योग की परम्परा चली आ रही है-
।

इयं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदु:।
स कालेनेह महता योगो नष्ट: परन्तप ॥
श्रीमद्भगवद्गीता॥४/१-२॥

अर्थात् इस अविनाशी योग को मैनें सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र मनु से और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना,किन्तु वह योग बहुत काल से इस लोक में नष्ट हो गया।(इसलिए पुन: तुमसे कह रहा हूँ।)

योग के भेद

श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय के नाम के अन्त में योग शब्द अन्वित है जिससे यह आभास होता है कि योग के विविध प्रकार हैं जबकि योग के मुख्यत: चार भेद ही सारवत् विद्यमान हैं जिनका नामोल्लेख निम्न रूप से है-

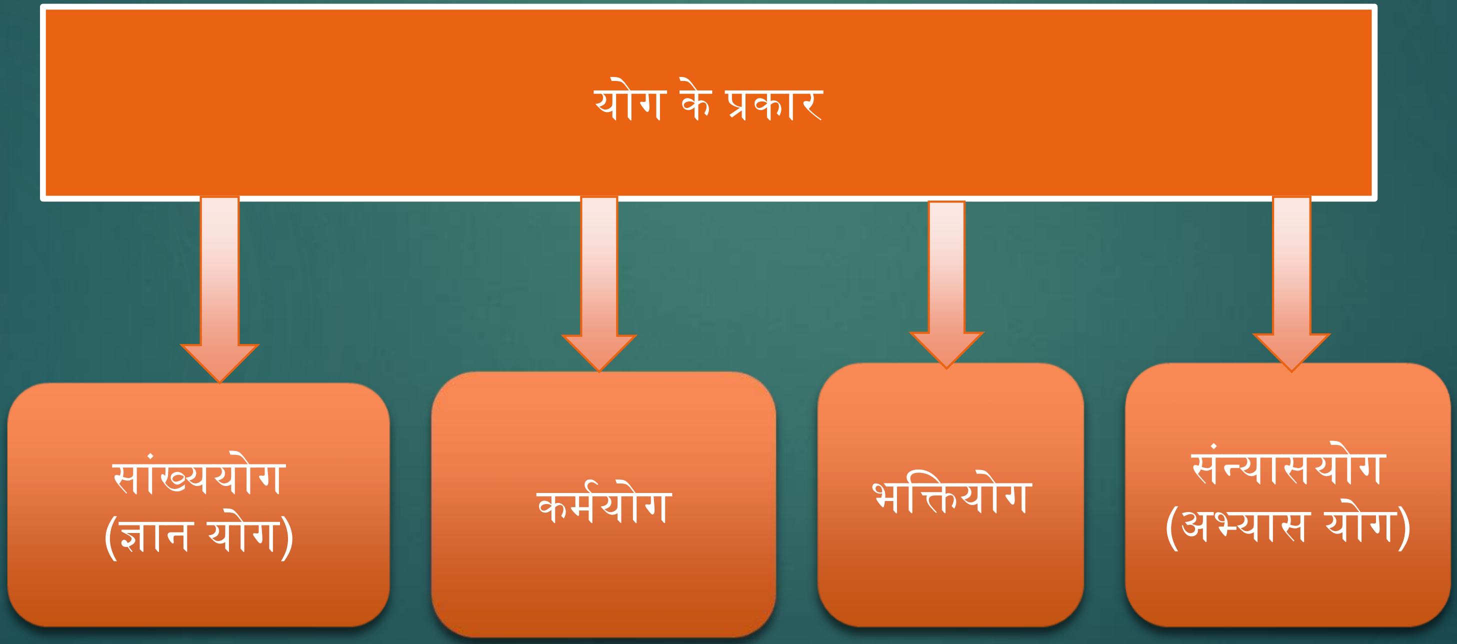

कर्मयोग-

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। बिना कर्म किये वह क्षण मात्र के लिए भी नहीं रह सकता है। इस सन्दर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है-

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:॥ श्रीमद्भगवद्गीता-३/५

उन्होंने आगे भी कर्म की अपरिहार्यता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि कर्म के बिना तो शरीर यात्रा भी नहीं सिद्ध हो सकती-

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण:।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मण:॥ ३/८

कर्म के विषय में सूक्ष्म विवेचन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्ग: कर्मसञ्ज्ञित:॥ ८/३

मोक्ष के साधनभूत नित्य-नैमित्तिक कर्मों को आत्मज्ञानपूर्वक ईश्वर की आराधना के रूप में करना तथा इन कर्मों को करने के लिए शरीर धारण अपरिहार्य होने से शरीर निर्वाह एवं यज्ञ आदि की पूर्ति के लिए द्रव्योपार्जन आदि वर्णाश्रम के अन्यान्य शास्त्रसम्मत कर्म में निरत रहना तथा साथ ही साथ आत्मज्ञान का भी अनुभव करते रहना ही कर्मयो ग है।

कर्म –चक्र एवं परिणाम

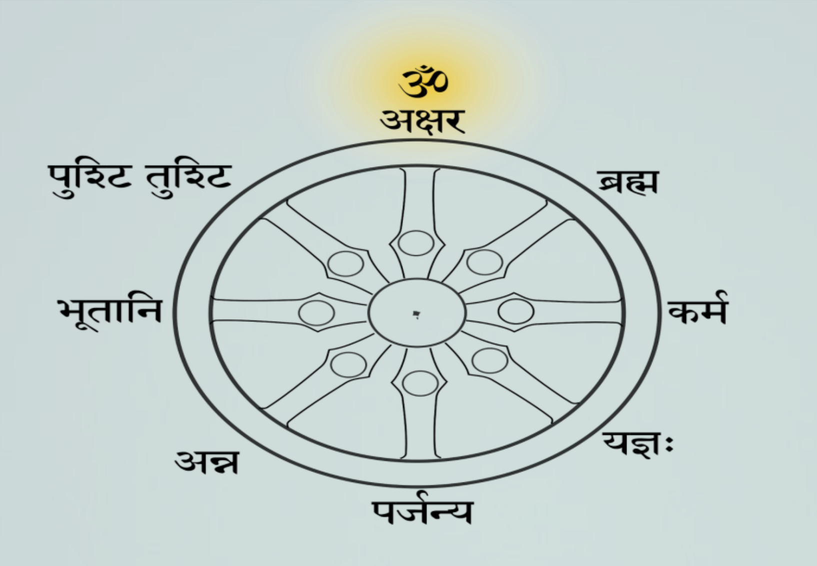

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भव:।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव:॥ ३/१४॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ ३/१५॥
इस चक्र के अनुसार चलने वाले और न चलने वाले का परिणाम-
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह य:।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥ ३/१६॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव:।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ ३/१७

कर्मयोगी

श्रेष्ठ-
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियै: कर्मयोगमसक्त: स विशिष्यते॥ ३/७॥

मिथ्याचारी-
कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचार: स उच्यते॥ ३/६॥

आसक्त एवं अनासक्त कर्मयोगी

आसक्त कर्मयोगी-
विषयों से इन्द्रियों को न हटाकर उसमें आसक्त होकर कर्म करने वाला मनुष्य कर्मबन्धन में बंधता रहता है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ ३/१५

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह य:।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥ ३/१६
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन:।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्ग: समाचर॥ ३/९॥

अनासक्त कर्मयोगी-
अनासक्त कर्मयोगी ही आत्मा को प्राप्त होता है-
तस्मादशक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुष:॥ ३/१९

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव:।
आत्मनेव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ ३/१७
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय:॥ ३/१८
यथा-
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:।
लोक सङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥ ३/२०॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमा: प्रजा:॥ ३/२४
सक्ता: कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्॥ ३/२५
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्त: समाचरन्॥ ३/२६

लोक की दो प्रतिष्ठा- सांख्यों का ज्ञानयोग एवं योगियों का कर्मयोग-

कर्म एवं ज्ञाननिष्ठ पुरुष तथा उनके कर्तव्य

कर्मनिष्ठपुरुष-

प्रकृतेर्गुणसम्मूढा: सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥ ३/२९

ज्ञाननिष्ठ पुरुष-

- शरीर धारण करते हुए भी कर्म करते हैं। जैसे- जनक आदि राजर्षि-

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:।
लोक सङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥ ३/२०॥

- अज्ञानियों में कर्म के प्रति प्रीति उत्पन्न कराने के लिए कर्म करते हैं-

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्त: समाचरन्॥ ३/२६

- लोक संग्रह के लिए कर्म करते रहते हैं-

सक्ता: कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्॥ ३/२५

कर्मयोग में आत्मयोग(ज्ञानयोग) का अन्तर्भाव

कर्मयोग की उपादेयता

- प्रकृति के संसर्ग से युक्त मुमुक्षु का सहसा ज्ञानयोग में अधिकार नहीं होता इसलिए उसे कर्म योग ही करना चाहिए।
- ज्ञानयोग के अधिकारी के लिए भी आत्मा के अकर्तापन को समझते हुए कर्म का साधन ही श्रेयष्कर है-

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति य:।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ ५/१०॥
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्॥ ४/१३॥

- विशिष्ट रूप से प्रसिद्धि प्राप्त पुरुष के लिए भी विशिष्ट रूप से कर्मयोग का आचरण करना ही कर्तव्य है-

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:।
लोक सङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥ ३/२०॥

- सम्पूर्ण जगत् के उद्धार के लिए भी कर्म का उपदेश किया गया है। क्योंकि ज्ञानयोगियों के लिए भी कर्मयोग इसीलिए कर्तव्य है और श्रेष्ठ पुरुष लोकसङ्ग्रह एवं रक्षा के लिए कर्म अवश्य करते हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ ४/७॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ ४/८॥

कर्मयोग के बिना संन्यास की प्राप्ति भी दुष्कर है। अत: कर्मयोग अपरिहार्य है-

सन्न्यासस्तु महाबाहो दु:खमाप्तुमयोगत:।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥ ५/६॥

धन्यवाद